वीर संवत् २५०२, ज्येष्ठ कृष्ण १२, गुरुवार
दिनांक-२४-०६-१९७६, गाथा-२९ - ३०, प्रवचन-१७

२९ गाथा। **आगे यह परमात्मा...** अर्थात् यह आत्मा। **व्यवहारनय से तो इस देह में ठहर रहा है, लेकिन निश्चयनयकर अपने स्वरूप में ही तिष्ठता है,...** आत्मा को कहते हैं।

देहादेहहिं जो वसइ भेयाभेय-णएण।
सो अप्पा मुणि जीव तुहुँ किं अण्णें बहुएण।।२९।।

अन्वयार्थ :- जो अनुपचरितअसद्भूतव्यवहारनयकर सम्बन्धवाले झूठे नय से **अपने से भिन्न जड़रूप देह में तिष्ठ रहा है,...** आहाहा! अनुपचरितअसद्भूतनय, झूठे नय से। आहाहा!

मुमुक्षु : असद्भूत का अर्थ झूठे?

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ। झूठे। आहाहा!

जड़रूप देह में तिष्ठ रहा है,... आहाहा! **और शुद्धनिश्चयनयकर अपने आत्मस्वभाव में ठहरा हुआ है,...** भगवान तो अपने स्वरूप में ही है। वह शरीर में है नहीं। शरीर तो भिन्न चीज़ है। अभी भी भिन्न है। होवे तब (नहीं)। आहाहा! यह कहा, उसे कहते हैं, देख! **'भेदाभेदनयेन देहादेहयोः वसति' शुद्धनिश्चयनयकर अपने आत्मस्वभाव में ठहरा हुआ है, अर्थात् व्यवहारनयकर तो देह से अभेदरूप है,...** अभेद ऐसा कहना है। व्यवहारनय से—झूठे नय से शरीर और आत्मा एक है, अभेद है, ऐसा कहा जाता है। समझ में आया?

मुमुक्षु : ....व्यवहार से तो सच्चा न?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह व्यवहार ही झूठा है। असद्भूतनय व्यवहार है।

परमाणु के स्कन्ध में परमाणु रहा है, वह भी अपने परिणमन के काल में स्वचतुष्टय में रहा है। जब जड़ में एक परमाणु भी स्व से है तो इस जड़ में भगवान आत्मा तो अत्यन्त भिन्न व्यवहारनय से शरीर के साथ अभेद कहने में आता है। भेदाभेद

शब्द है न? यह अभेद व्यवहारनय से अभेद। निश्चयनय से भेद, ऐसा। सत्यनय से भेद, सत्यनय से भेद, असत्यनय से अभेद। आहाहा! **देह से अभेदरूप (तन्मय) है,...** तन्मय अर्थात् व्यवहार से अभेद कहना है। शरीर में आत्मा अभेद असद्भूत—झूठे नय से अभेद कहने में आता है।

मुमुक्षु : अभेदनय से सच्चा है व्यवहारनय से।

पूज्य गुरुदेवश्री : सच्चा जरा भी नहीं। मात्र ज्ञान कराने के लिये बात है। आहाहा! कलशटीका में तो बहुत लिखा है। झूठा, झूठा, झूठा। व्यवहार झूठा है। आहाहा!

शुद्धनिश्चयनयकर अपने आत्मस्वभाव में ठहरा हुआ है, अर्थात् व्यवहारनयकर तो देह से अभेदरूप (तन्मय) है, और निश्चय से सदाकाल से अत्यन्त जुदा है,... भेद। व्यवहार से अभेद, निश्चय से भेद। ऐसा कहना है यहाँ। अभेद अपना स्वरूप है निश्चय, वह यहाँ बात नहीं लेनी है। क्या कहा, समझ में आया? आत्मा निश्चय अभेदस्वरूप है, वह यहाँ नहीं लेना। यहाँ तो शरीर के साथ इकट्ठा रहता है, इस अपेक्षा से अभेदनय से व्यवहाररूप से अभेदनय से एक है, ऐसा कहा जाता है। समझ में आया?

निश्चय से वस्तु स्वयं ही अभेद है, पर्याय आदि के भेद हैं, वह यहाँ बात नहीं लेनी। यहाँ तो शरीर और आत्मा व्यवहारनय से अभेद है, ऐसा कहना है। समझ में आया? निश्चयनय से भगवान आत्मा शरीर से भेद है, भिन्न है।

मुमुक्षु : सर्वथा भेद है?

पूज्य गुरुदेवश्री : सर्वथा भिन्न है।

मुमुक्षु : एक नय से....

पूज्य गुरुदेवश्री : वह झूठे नय से कहा था। आहाहा! ऐसा है।

यहाँ तो भेद-अभेद की व्याख्या में अभेद अर्थात् आत्मा शरीर के साथ है, ऐसा व्यवहारनय से अभेद है, ऐसा कहा जाता है। वह जो अभेद आत्मा त्रिकाली दृष्टि का विषय जो अभेद, वह यहाँ नहीं। वह यहाँ अभेद की व्याख्या नहीं। समझ में आया? भूतार्थ वस्तु जो अभेद है, वही सम्यग्दर्शन का विषय है और पर्याय के भेद आदि हैं, वह व्यवहार का विषय है। उसका यहाँ काम नहीं। ऐसा भेदाभेद का यहाँ काम नहीं।

यहाँ तो शरीर और आत्मा व्यवहार से अभेद कहे जाते हैं। सत्यदृष्टि से वे दोनों भिन्न हैं, ऐसा यहाँ कहना है। समझ में आया?

देखो! **निश्चय से सदाकाल से अत्यन्त जुदा है,...** देखो! वापस अभी ऐसा नहीं। सदा काल भिन्न है। है? आहाहा! '**शुद्धनिश्चयनयेन तु भेदनयेन स्वदेहाद्भिते स्वात्मनि वसति यः तमात्मानं मन्यस्व जानीहि हे जीव**' आहाहा! लो! **हे जीव! तू परमात्मा (उसे) जान।** आहाहा! तेरा भगवान ज्ञायकभाव शुद्ध चैतन्य सत्ता, ऐसा जो परमात्मा, उसे तू देह से निश्चय से भिन्न जान। समझ में आया? **नित्यानन्द वीतराग निर्विकल्पसमाधि में ठहरके... 'मन्यस्व'** आया न? जान। परन्तु किस प्रकार जान? आहाहा! **नित्यानन्द वीतराग निर्विकल्पसमाधि में ठहरके...** आहाहा! नित्य आनन्द ऐसी दशा, वीतराग निर्विकल्प समाधि। आहाहा! त्रिकाल अभेद में पर्याय को झुकाने से वहाँ आनन्द प्रगट होता है, वीतराग दशा है, अभेद है, शान्ति है। अरे! ऐसी बातें बहुत... उसमें **ठहरके अपने आत्मा का ध्यान कर।** मात्र परमात्मा '**मन्यस्व**' उसकी यह व्याख्या की है। है न? परमात्मा को मान। अर्थात् क्या? वह परमात्मा देह से अत्यन्त भिन्न, उसे नित्यानन्द वीतराग निर्विकल्प शान्ति द्वारा ठहरकर जान। ऐसा (लिया)। आहाहा!

शरीर और आत्मा झूठेनय से अभेद है। शुद्ध निश्चयनय से, सत्यनय से देह और आत्मा भिन्न है। ऐसे आत्मा—परमात्मा को, उस त्रिकाली भगवान परमात्मा को वर्तमान नित्यानन्द ऐसी वीतराग निर्विकल्प शान्ति अर्थात् कि दर्शन-ज्ञान-चारित्र की परिणति द्वारा उसे जान। ऐसी व्याख्या है, भाई! समझ में आया? आया था न उसमें, नहीं? २७ में। **अपने स्वरूप की तरफ क्यों नहीं देखता।** आहाहा! बाहर के झगड़े में पड़ा है। देखने यह, ऐसा कहते हैं।

भगवान आत्मा परमात्मस्वरूप स्वयं विराजमान है। उसे पर से भिन्न निर्विकल्प शान्ति द्वारा, वीतरागी परिणति द्वारा उसे जान। ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? आत्मा ऐसा है, ऐसा जानकर धारणा कर ली, वह नहीं—ऐसा कहते हैं। आहाहा! भगवान परमात्मस्वरूप स्वयं, उसे विकल्प की वृत्तियाँ जो परसन्मुख की है, उन्हें छोड़कर, छोड़कर नहीं कहा परन्तु इसका अर्थ हुआ। अन्तर्मुख झुकने से उसकी अरागी शान्ति

की परिणति समाधि की होती है, उसके द्वारा जान। आहाहा!

शास्त्र से जान, ऐसा भी नहीं; विकल्प से जान, ऐसा भी नहीं। यह जानना नहीं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! रागरहित जैसा वीतराग सदानन्दस्वभाव भगवान है। सदानन्द वीतराग स्वभाव है प्रभु आत्मा का। उसकी ओर की झुकाववाली। सदानन्द नित्यानन्द अर्थात् कायम आनन्द की परिणतिवाला। आहाहा! ऐसी वीतराग समाधि से (जान)। यह समाधि अर्थात् शान्ति है। अरागी, अकषाय शान्ति द्वारा उसे जान। आहाहा! ऐसी बात है।

अपने आत्मा का ध्यान कर। अर्थात् कि उस स्वरूप की ओर का झुकाव, वही ध्यान है। पूर्णानन्द प्रभु की ओर का झुकाव, वही निर्विकल्प समाधि है और वही ध्यान है। आहाहा! ध्यान की है पर्याय। उसमें निर्विकल्प वीतराग समाधि है पर्याय। पर्याय में उसे जान, ऐसा कहते हैं। आहाहा! ऐसी बात है।

मुमुक्षु : ज्ञात होता है पर्याय में।

पूज्य गुरुदेवश्री : ध्रुव में क्या ज्ञात हो? ध्रुव किसे जाने? आहाहा! इसलिए दोनों बातें सिद्ध की। परिणमन सिद्ध किया और त्रिकाली ध्रुव सिद्ध किया। अर्थात् कि निर्विकल्प परिणति द्वारा ध्रुव को जान। आहाहा! यह तो धीर का काम है, भाई! यह कहीं....

मुमुक्षु : अन्तर्मुहूर्त में केवलज्ञान हो।

पूज्य गुरुदेवश्री : अन्तर्मुहूर्त में केवल (ज्ञान) लेगा, उसमें क्या है? आहाहा! भरा है न! ज्ञानस्वभाव तो भरा ही है। आहाहा! समुद्र महा तालाब पानी भरा है। ऐसे एक लाईन करे पतली तो एकदम बाहर निकले पानी। आहाहा! इसी प्रकार भगवान चैतन्यस्वभाव के समुद्र से तो प्रभु भरा हुआ है। उसे एकाग्रता की जरा लाईन डाले तो शुद्ध परिणति बाहर आवे। स्वभाव का जो प्रवाह है, वह प्रवाह परिणति में आता है। ऐसी बात है। आहाहा! समझ में आया? यह लोग यही घोंटे। लो, इससे होता है। व्यवहार से होता है, यह क्यों नहीं आया इसमें? दो मार्ग है—निश्चय और व्यवहार। अरे! बापू! ऐसा नहीं है, भाई!

मुमुक्षु : निश्चय का मार्ग जल्दी का, व्यवहार का मार्ग धीरे का।

पूज्य गुरुदेवश्री : व्यवहार-फ्यवहार मार्ग ही नहीं है। यह बात ही की नहीं। वह तो विकल्प है। विकल्प द्वारा निर्विकल्प ज्ञात होता है? समझ में आया? बात तो ऐसी है, बापू!

मुमुक्षु : अनेकान्त....

पूज्य गुरुदेवश्री : अनेकान्त (यह कि) निर्विकल्प परिणति से ज्ञात होता है और विकल्प से ज्ञात नहीं होता। यह अनेकान्त। आहाहा! ऐसा स्वरूप। लोगों को... अन्तर वस्तु पड़ी है महाप्रभु। आहाहा! मात्र नजर के आलस्य से पड़ी है वह वस्तु। आहाहा! नजरें बाहर में भटका करती हैं, इसलिए अन्दर की चीज़ को देखने की निवृत्ति इसे नहीं है। आहाहा!

परमात्मा सदानन्दस्वरूप। जितने विशेषण पर्याय में प्रयोग किये हैं, ऐसे ही विशेषणवाला तत्त्व है। क्या कहा यह? यह पर्याय में प्रयोग किया है न? **नित्यानन्द वीतराग निर्विकल्पसमाधि में ठहरके...** तो यह तो पर्याय के वर्तमान के विशेषण हैं। परन्तु यह सब आत्मा में भी है। आत्मा नित्यानन्द है, वीतराग है, अभेद है, शान्तमय है। आहाहा! ओहो! शैली... शैली है परन्तु! इसकी जाति में है, उसकी जाति के अंकुर प्रगट करके उसे जान। आहाहा! समझ में आया? व्यवहार से ज्ञात हो और व्यवहार से ज्ञात हो, व्यवहार से कहो या निमित्त से कहो। ऐसा है नहीं।

मुमुक्षु : आप निमित्त बहुत इकट्ठे करते हो।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, वे कहते हैं, भाई! क्या करे, बापू! यह पुस्तकें (प्रकाशित होती हैं), सब पण्डित बाहर भेजते हो। निमित्त द्वारा काम तो लेते हो और कहे उपादान से काम होता है और निमित्त से नहीं होता। अरे! प्रभु! क्या किया? भाई तूने! भारी तर्क निकाला, भाई! आहाहा!

मुमुक्षु : हजारों-लाखों रुपये तो आप पण्डितों के वेतन में खर्च करते हो।

पूज्य गुरुदेवश्री : धन्नालाल जैसे, बाबूभाई जैसे सबको बाहर भेजते हो और कहे कि निमित्त से नहीं होता। अरे! भगवान! ऐसा नहीं होता। प्रभु! ऐसे तर्क नहीं होते,

भाई! सिद्धान्त तो सिद्धान्त है, वही रहेगा। समझ में आया? आहाहा!

यहाँ तो कहा न? देखो न! **नित्यानन्द वीतराग निर्विकल्पसमाधि में ठहरके अपने आत्मा का ध्यान कर।** उससे तुझे ज्ञात होगा। व्यवहार से अर्थात् निमित्त से ज्ञात नहीं होगा। अन्तर का व्यवहार, वह निमित्त है। बाहर का निमित्त, वह बाहर का व्यवहार है। आहाहा!

मुमुक्षु : व्यवहार के तो छिलके हो जाये।

पूज्य गुरुदेवश्री : छिलके... छिलके कूचा है। आहाहा!

कलश में तो यहाँ तक कहा नहीं था? व्यवहारचारित्र आदरणीय नहीं। वर्जनेयोग्य नहीं, ऐसा नहीं है। दुष्ट है, अनिष्ट है, घातक है। ऐसे शब्द प्रयोग किये हैं। पुण्य-पाप अधिकार नहीं? १०८ कलश?

यहाँ कोई जानेगा कि शुभ-अशुभ क्रियारूप जो आचरणरूप चारित्र है, सो करनेयोग्य नहीं है, उसी प्रकार वर्जन करनेयोग्य भी नहीं है? उत्तर इस प्रकार है— वर्जन करनेयोग्य है,... आदरनेयोग्य तो नहीं। उससे होता नहीं परन्तु वर्जन करनेयोग्य है। **व्यवहारचारित्र होता हुआ दुष्ट है, अनिष्ट है, घातक है; इसलिए विषय-कषाय के समान क्रियारूप चारित्र निषिद्ध है...** आहाहा! अब व्यवहारचारित्र करते-करते होगा। अरे! प्रभु! यह मार्ग को कलंक है, भाई!

मुमुक्षु : यह तो पण्डित का है।

पूज्य गुरुदेवश्री : पण्डित का है परन्तु न्याय से है या नहीं? राजमल्लजी (कृत) न्याय मिलता है या नहीं?

राग है, वह तो घातक है। यह तो पाठ में है। '**मोक्षहेतुतिरोधानाद्बन्धत्वात्सस्वयमेव च। मोक्षहेतुतिरोधायि**' पाठ है। मोक्ष के हेतु से वे सब विपरीत भाव हैं। आहाहा! इन्होंने घर का नहीं डाला है। पाठ में है, उसका स्पष्टीकरण किया है। आहाहा! '**न्निषिध्यते**' देखो! **निष्कर्म-अवस्था उसका कारण है जीव का शुद्धरूप परिणमन, उसका घातक है,...** पाठ में ही है। **बन्धरूप है।** आहाहा! बहुत स्पष्ट! पण्डित घर का कहते हैं? जो मार्ग है, उसकी पण्डितों ने स्पष्टता की है। आहाहा! अरे! आठ वर्ष का

लड़का सत्य को कहे तो स्वीकार करना चाहिए। उसमें क्या है? आहाहा! सत्य कहता हो तो स्वीकार करना चाहिए इसे। बालक है तो क्या? बालक तो आठ वर्ष में केवल (ज्ञान) प्राप्त करता है। उसमें क्या है? आहाहा!

कम्बल का सिंह, वह सिंह नहीं है। आता है न? कपड़े का सिंह, वह सिंह नहीं है। कम्बल में। आता है, कलशटीका में है। उसी प्रकार राग का चारित्र, वह कम्बल का सिंह है। आहाहा! यह सब व्याख्या किसके ऊपर से चली? **नित्यानन्द वीतराग निर्विकल्पसमाधि में ठहरके...** अन्तर स्वरूप-सन्मुख की शान्ति और रागरहित परिणति से वह ज्ञात हो, ऐसा है। अर्थात् कि व्यवहार से ज्ञात हो, ऐसा नहीं। आहाहा! उसकी महत्ता है, इतनी कि यह निर्विकल्प से ज्ञात हो, ऐसी इसकी महत्ता है। सविकल्प से ज्ञात हो, यह कलंक है, कहते हैं। आहाहा! समझ में आया?

अपने से भिन्न... देखा? **देह रागादिकों से तुझे क्या प्रयोजन है?** शरीर की क्रिया और शरीर को अनुसरकर होते रागादि। ऐसा लिखा है? कलश में ऐसा लिखा है। दो बातें ली हैं। ऐसा कि देहादि की क्रिया और उसे अनुसरकर होता भाव। कलश में ऐसी दो बातें ली हैं। जहाँ क्रिया का निषेध करना है न, वहाँ क्रिया के दो प्रकार लिये हैं। यह शरीर-वाणी से होता है, यह क्रिया। यह तो जड़ की भले। परन्तु उसे अनुसरकर होता भाव, दोनों निषेध है। यह पाठ में लिया है। कलशटीका में। आहाहा! क्योंकि वह पर-देह की क्रिया, उसे अनुसरकर हो, वह भाव तो विकारी ही होगा। स्व को अनुसरकर हो, वह भाव अविकारी है। सूक्ष्म पड़े। वस्तु ऐसी है, भाई!

अपने से भिन्न देह रागादिकों से तुझे क्या प्रयोजन है? आहाहा! अर्थात् देह जड़ और देह को अनुसरकर होनेवाला शुभभाव आदि हों, उसके साथ तुझे क्या प्रयोजन है? कहते हैं। समझ में आया?

भावार्थ :- देह में रहता हुआ भी निश्चय से देहस्वरूप जो नहीं होता,... भगवान बाह्य में देह में एक क्षेत्र में इकट्ठे दिखते हैं तथापि वास्तव में देहस्वरूप जो नहीं होता। अरूपी भगवान जड़स्वरूप कैसे हो वहाँ? आहाहा! **वही निज शुद्धात्मा उपादेय है।** आहाहा! मात्र मक्खन है! राग और देह से भिन्न भगवान, ऐसा जो निज शुद्धात्मा, वही उपादेय—आदरणीय है। यह २९ (गाथा) हुई।

गाथा - ३०

अथ जीवाजीवयोरेकत्वं मा कार्षीर्लक्षणभेदेन भेदोऽस्तीति निरूपयति -

३०) जीवाजीव म एक्कु करि लक्खण भेएँ भेउ।
जो परु सो परु भणमि मुणि अप्पा अप्पु अभेउ।।३०।।

जीवाजीवौ मा एकौ कुरु लक्षणभेदेन भेदः।
यत्परं तत्परं भणामि मन्यस्व आत्मन आत्मना अभेदः।।३०।।

हे प्रभाकरभट्ट जीवाजीवावेकौ मा कार्षीः। कस्मात्। लक्षणभेदेन भेदोऽस्ति तद्यथा- रसादिरहितं शुद्धचैतन्यं जीवलक्षणम्। तथा चोक्तं प्राभृते - ''अरसमरूवमगंधं अव्वत्तं चेदणा- गुणमसद्दं जाण अलिंगग्गहणं जीवमणिद्दिट्ठसंठाणं।।'' इत्थंभूतशुद्धात्मनो भिन्नमजीवलक्षणम्। तच्च द्विविधम्। जीवसंबन्धमजीवसंबन्धं च। देहरागादिरूपं जीवसंबन्धं, पुद्गलादिपञ्चद्रव्यरूपम- जीवसंबन्धमजीवलक्षणम्। अत एव भिन्नं जीवादजीवलक्षणम्। ततः कारणात् यत्परं रागादिकं तत्परं जानीहि। कथंभूतम्। भेद्यमभेद्यमित्यर्थः। अत्र योऽसौ शुद्धलक्षणसंयुक्तः शुद्धात्मा स एवोपादेय इति भावार्थः।।३०।।

आगे जीव ओर अजीव में लक्षण के भेद से भेद हैं, तू दोनों को एक मत जान, ऐसा कहते हैं - हे प्रभाकरभट्ट,

ना करो जीव अजीव में एकत्व लक्षण भिन्न हैं।
है आतमा ही मात्र आतम मान पर सब भिन्न हैं।।३०।।

अन्वयार्थ :- [जीवाजीवौ] जीव और अजीव को [एकौ] एक [मा कार्षीः] मत कर क्योंकि इन दोनों में [लक्षणभेदेन] लक्षण के भेद से [भेदः] भेद है [यत्परं] जो पर के सम्बन्ध से उत्पन्न हुए रागादि विभाव (विकार) हैं, [तत्परं] उनको पर (अन्य) [मन्यस्व] समझ [च] और [आत्मनः] आत्मा का [आत्मना अभेदः] अपने से अभेद जान [भणामि] ऐसा मैं कहता हूँ।

भावार्थ :- जीव, अजीव के लक्षणों में से जीव का लक्षण शुद्ध चैतन्य है, वह स्पर्श, रस, गंधरूप शब्दादिक से रहित है। ऐसा ही श्री समयसार में कहा है - ''अरसं''

इत्यादि। इसका सारांश यह है, कि जो आत्मद्रव्य है, वह मिष्ट आदि पाँच प्रकार के रसरहित है, श्वेत आदिक पाँच तरह के वर्णरहित है, सुगन्ध-दुर्गंध इन दो तरह के गंध उसमें नहीं हैं, प्रगट (दृष्टिगोचर) नहीं है, चैतन्यगुणसहित है, शब्द से रहित है, पुल्लिंग आदि करके ग्रहण नहीं होता अर्थात् लिंगरहित है, और उसका आकार नहीं दिखता अर्थात् निराकार वस्तु है। आकार छह प्रकार के हैं – समचतुरस्र, न्यग्रोधपरिमंडल, सातिक, कुब्जक, वामन, हुंडक। इन छह प्रकार के आकारों से रहित है, ऐसा जो चिद्रूप निज वस्तु है उसे तूँ पहचान। आत्मा से भिन्न जो अजीव पदार्थ है, उसके लक्षण दो तरह से हैं, एक जीव सम्बन्धी, दूसरा अजीव संबंधी। जो द्रव्यकर्म भावकर्म-नोकर्मरूप है, वह तो जीवसंबंधी है, और पुद्गलादि पाँच द्रव्यरूप अजीव जीवसंबंधी नहीं हैं, अजीवसंबंधी ही हैं, इसलिये अजीव हैं, जीव से भिन्न हैं। इस कारण जीव से भिन्न अजीवरूप जो पदार्थ हैं, उनको अपने मत समझो। यद्यपि रागादिक विभाव परिणाम जीव में ही उपजते हैं, इससे जीव के कहे जाते हैं, परंतु वे कर्मजनित हैं, परपदार्थ (कर्म) के संबंध से हैं, इसलिये पर ही समझो। यहाँ पर जीव-अजीव दो पदार्थ कहे गये हैं, उनमें से शुद्ध चेतना लक्षण का धारण करनेवाला शुद्धात्मा ही ध्यान करने योग्य है, यह सारांश हुआ।।३०।।

गाथा - ३० पर प्रवचन

३०। **आगे जीव और अजीव में लक्षण के भेद से भेद है,...** दोनों के लक्षणभेद है, इसलिए वस्तु भिन्न है, ऐसा कहते हैं। **तू दोनों को एक मत जान, ऐसा कहते हैं—**

३०) जीवाजीव म एक्कु करि लक्खण भेएँ भेउ।
जो परु सो परु भणमि मुणि अप्पा अप्पु अभेउ।।३०।।

हे प्रभाकर भट्ट... परन्तु जब तुम ऐसा कहो कि पर से ज्ञात नहीं होता। और प्रभाकर भट्ट को कहे, तू ऐसा जान। भाई! ऐसे तर्क नहीं होते। वाणी के काल में वाणी होती है। समझ में आया? एक ओर कहे कि दिव्यध्वनि से लाभ नहीं होता। आया नहीं पहले? वेद अर्थात् दिव्यध्वनि और अर्थ अर्थात् शास्त्र। मुनियों के कहे हुए शास्त्र। महामुनि गणधरों के कहे हुए। उनसे आत्मा ज्ञात नहीं होता। यहाँ ऐसा कैसे कहते हैं

कि हे प्रभाकर भट्ट! मैं कहता हूँ, उसे जान। भाई! ऐसे तर्क नहीं होते। कथनशैली तो ऐसी आती है।

यह तो कुन्दकुन्दाचार्य ने नहीं कहा? '**वोच्छामि**' पहली गाथा। मैं समयसार कहूँगा। प्रभु! एक बार कहते हो कि वाणी आत्मा नहीं कर सकता। '**वोच्छामि समयपाहुड**' भाई! ऐसा नहीं लिया जाता। इसे विनय से जानना चाहिए, भाई! तुम ऐसा कैसे कहते हो? ऐसा नहीं किया जाता। समझ में आया? आत्मा बोल नहीं सकता। और कहे कि मैं कहूँगा।

मुमुक्षु : आचार्य कहते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : स्वयं। भाई! इसमें ऐसा उल्टा नहीं लिया जाता। बापू! यह तो कहते हैं, विकल्प हुआ है और वाणी के काल में वाणी निकलती है। ऐसी बात है, भाई! इसलिए वाणी की पर्याय का स्व—पर कहने की सामर्थ्यवाली वाणी, स्व—पर जानने की सामर्थ्यवाला भगवान। वाणी में स्व—पर को कहनेवाली सामर्थ्य है। वह आत्मा के कारण वाणी नहीं है। आहाहा! समझ में आया?

जीव और अजीव को एक मत कर... आहाहा! **क्योंकि इन दोनों में लक्षण के भेद से भेद है, जो पर के सम्बन्ध से उत्पन्न हुए रागादि विभाव (विकार) हैं, उनको पर समझ...** आहाहा! देखा! जीव-अजीव के लक्षणभेद से भेद है और अब रागादि जो होते हैं, उन्हें पर समझ। आहाहा! क्योंकि निमित्त के लक्ष्य से हुई चीज़, वह पर है। तेरी चीज़ नहीं। आहाहा! यह व्यवहार होता है, वह कहीं तेरी चीज़ नहीं, ऐसा कहते हैं। व्यवहाररत्नत्रय का विकल्प, वह तेरी चीज़ नहीं। आहाहा! भगवान आनन्द का नाथ प्रभु, पूरा उसका उपादान अतीन्द्रिय आनन्दवाला है। आहाहा! उसकी परिणति में अतीन्द्रिय आनन्द का अंश प्रगट हो, वह उसकी जाति है। और राग उत्पन्न होता है, वह परवस्तु है, विकार है। समझ में आया? अरे! अब ऐसा उपदेश। लोगों को...

भाई! यह तो वीतरागमार्ग है। जो वाणी का कर्ता भी आत्मा नहीं। तथापि यहाँ तो आचार्य कहते हैं, तू ऐसा वाणी से... '**अप्पा अप्पु अभेउ**' आहाहा! सत्य को सत्यरूप से रहने दे, भाई! कहते हैं तो यह कहते हैं, वह वाणी से कहते हैं। उसमें ज्ञान निमित्त है। परन्तु निमित्त है, इसलिए वाणी हुई है, ऐसा नहीं है। वाणी का उस काल में

उत्पत्ति का क्षण और काल है। इस कारण से वाणी होती है, और उसे कहते हैं कि तू ऐसा जान। उसे जानने की पर्याय भी उस काल में उसके आश्रय से होगी। उसे जान का अर्थ यह हुआ या नहीं? उसे जान। अर्थात् कि निर्विकल्प परिणति से जान। कहते हैं, वह वाणी अलग और उसे कहते हैं कि तू ऐसा जान। यह तो वह स्वयं निर्विकल्प परिणति से जानेगा, तब 'जान' कहने में आयेगा। परन्तु उपदेश में क्या कहा जाये? समझ में आया?

'तत्परं' समझ और आत्मा का अपने से अभेद जान... आहाहा! यह राग से नहीं, पर से नहीं। चिदानन्द भगवान एकरूप अभेद है, उसे पर्याय में जान। आहाहा! है? **'आत्मन आत्मना अभेदः'** ऐसा। आत्मा को आत्मा से अभेद जान। आहाहा! **ऐसा मैं कहता हूँ।** लो! आया? **'भणामि'** ऐई! पण्डितजी! **'भणामि' ऐसा मैं कहता हूँ।** आहाहा! अरे! बापू! भाषा, भाई! ऐसे तर्क नहीं होते। समझ में आया?

इसलिए कहा है न? कि अबुध को समझाने के लिये ज्ञानी व्यवहार से समझाते हैं। परन्तु वह व्यवहार से समझावे, उसे ही पकड़ता है। तुम तो व्यवहार से कहते हो या नहीं हमको? तो वह देशना सुनने के योग्य नहीं है। आहाहा! तुमने व्यवहार से कहा है या नहीं? उसमें आया है न? आठवीं गाथा में। चाहे जैसा साधिक बुद्धिवाला हो, इतना तो उसे कहना पड़े, दर्शन-ज्ञान-चारित्र प्राप्त हो, वह आत्मा। यह व्यवहार किया। (समयसार) आठवीं गाथा। दर्शन-ज्ञान-चारित्र (ऐसे) भेद से बात की। व्यवहार से बात की। तब तुम व्यवहार से कहते हो और फिर व्यवहार से लाभ नहीं होता? अरे! भगवान! ऐसा नहीं पकड़ा जाता। भाई! ऐसा नहीं होता। आहाहा!

चालीस वर्ष की माँ ऐसे वस्त्र व्यवस्थित पहनकर बैठी हो। बीस वर्ष का जवान लड़का उसकी मस्करी नहीं करता। वह जननी है। समझ में आया? आहाहा! माता है। चालीस वर्ष की जवान हो। तू बीस वर्ष का हो। वस्त्र पटली पाड़कर व्यवस्थित ऐसे बैठी हो। माँ यह क्या है? ऐसा नहीं कहा जाता। आहाहा! ऐसा कहते हैं कि हम कहते हैं, उसे तू पकड़ कि जो कहो, है या नहीं? ऐसा नहीं कहा जाता। ऐसा कहते हैं। आहाहा! तुम कहो कि निमित्त से लाभ नहीं होता और फिर बोलकर हमको निमित्त से समझाते हो। भाई! ऐसे नहीं बोला जाता।

मुमुक्षु : 'मैं कहता हूँ।'

पूज्य गुरुदेवश्री : मैं कहता हूँ। हाँ, देखो! **ऐसा मैं कहता हूँ।** है? आहाहा! '**भणामि**' है न परन्तु? '**भणामि**' है स्पष्ट। आहाहा! '**जो परु सो परु भणमि**' आहाहा! यह वह '**भणमि**' है, यह मूल शब्द है। परन्तु नीचे इसका अर्थ करते हैं। नीचे है न संस्कृत? '**भणामि**' है न? मूल में '**भणमि**' है। परन्तु इसका यह अर्थ नहीं करते। यह नीचे संस्कृत का अर्थ करते हैं। अपने ऐसा कहते हैं। मूल पाठ का न करके इन्होंने शब्दार्थ का—अन्वयार्थ में यह करते हैं, '**भणामि**' में से किया है। यह संस्कृत छाया है न, इसका अर्थ किया है। आहाहा!

भावार्थ :- जीव अजीव के लक्षणों में से जीव का लक्षण शुद्ध चैतन्य है,... आहाहा! जीव और अजीव के लक्षण में से दोनों भिन्न हैं, इसलिए उनके लक्षण भिन्न हैं, ऐसा कहते हैं। भगवान आत्मा का लक्षण शुद्ध चैतन्य है। आहाहा! हिले-चले, वह त्रस; स्थिर रहे, वह स्थावर—यह लक्षण जीव का नहीं है। आहाहा! ऐसा कि हिले-चले इसलिए त्रस और स्थिर रहे, वह स्थावर। तो स्थिर तो सिद्ध भी स्थिर रहते हैं और रजकण भी हिलते-चलते हैं। यह लक्षण जीव का नहीं कहलाता। आहाहा!

यह तो त्रस की यह व्याख्या नहीं है। पंचास्तिकाय में स्थावर और अग्नि, वायु को त्रस नहीं कहा? अग्नि और वायु गति करते हैं न! ऐसा है न? त्रस कहा। पंचास्तिकाय में। क्या अपेक्षा है? भाई!

मुमुक्षु : .... तो स्थावर है।

पूज्य गुरुदेवश्री : स्थावर है, तथापि उन्हें त्रस कहा। पृथ्वी, जल और अग्नि, वायु। पाँच को। पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और वनस्पति। पृथ्वी, जल, वनस्पति को स्थावर कहा और अग्नि तथा वायु (को त्रस कहा)। ऐसे अग्नि का भड़का होता है। हवा ऐसे (बहती है)। उसे त्रस कहा है, लो! पंचास्तिकाय में। आहाहा! भाई! क्या अपेक्षा है? उसमें भी कोई तर्क करता है कि यह शब्द आचार्य के नहीं। किसी ने ऊपर से डाले हैं, ऐसा कोई कहता है। आहाहा!

यह तो शुद्ध चैतन्य लक्षण से लक्षित है। आहाहा! शुद्ध चैतन्य के भाव से वह

ज्ञात हो, ऐसा है। उसका लक्षण शुद्ध चैतन्य है। आहाहा! वह राग से और शरीर से ज्ञात हो, ऐसा उसका स्वरूप ही नहीं है। आहाहा! समझ में आया?

वह स्पर्श, रस, गन्धरूप शब्दादिक से रहित है। ऐसा ही श्री समयसार में कहा है— अरस आदि है न? अलिंगग्रहण। भावप्राभृत में है, पंचास्तिकाय में है। पंचास्तिकाय में गाथा-१२७। भावप्राभृत में गाथा-६४। पंचास्तिकाय गाथा-१२७। है। पंचास्तिकाय-१२७ और भावप्राभृत गाथा-६४। भावप्राभृत है न? उसकी गाथा-६४। १७२ प्रवचनसार में है। और नियमसार में (४६ गाथा) है। इसमें इतना लिखा था तब। है न नियमसार में है। धवल में है।

अरसं इत्यादि। इसका सारांश यह है कि जो आत्मद्रव्य है, वह मिष्ट आदि पाँच प्रकार के रस रहित है,... यह भी अपने आ गया है। **श्वेत आदिक पाँच तरह के वर्ण रहित है, सुगन्ध, दुर्गन्ध इन दो तरह के गन्ध उसमें नहीं है, प्रगट (दृष्टिगोचर) नहीं है, चैतन्यगुण सहित है, शब्द से रहित है,...** अव्यक्त का अर्थ किया है। **चैतन्यगुण सहित है, शब्द से रहित है, पुल्लिंग आदि करके ग्रहण नहीं होता, अर्थात् लिंगरहित है, और उसका आकार नहीं दिखता, अर्थात् निराकार वस्तु है। आकार छह प्रकार के हैं - समचतुरस्त्र, नेग्रोधपरिमण्डल, सातिक, कुब्जक, वामन, हुण्डक। इन छह प्रकार के आकारों से रहित है, ऐसा जो चिद्रूप निज वस्तु है,...** चिद्रूप, ज्ञानरूप, ज्ञानस्वरूप ऐसी जो वस्तु, निज वस्तु अपनी। आहाहा! **उसे तू पहचान।** उसे तू जान। आहाहा! चिद्रूप वस्तु प्रभु आत्मा, उसे तू जान। रागादि को जान, कि यह नहीं। वह तो सब आत्मा नहीं। यह तो भाई! इसमें पण्डिताई का काम नहीं। आहाहा! निभृत पुरुषों को... नहीं आया? आहाहा! चिन्तारहित पुरुषों का यह काम है, भाई! आहाहा!

आत्मा से भिन्न जो अजीव पदार्थ है, उसके लक्षण दो तरह से हैं,... आत्मा से भिन्न अजीव है, उसके लक्षण दो प्रकार के। एक जीव सम्बन्धी अजीव और एक दूसरा जीव सम्बन्ध बिना का अजीव। समझ में आया? **जो द्रव्यकर्म भावकर्म, नोकर्मरूप है, वह तो जीवसम्बन्धी है,...** उसका जीव के साथ सम्बन्ध है न? जीव जड़कर्म, भावकर्म, वह अजीव, हों! आहाहा! पुण्य-पाप, दया-दान, व्रत-भक्तिभाव, वे सब अजीव। वह अजीव, जीव के सम्बन्धवाला अजीव। आहाहा!

पुद्गलादि पाँच द्रव्यरूप अजीव जीवसम्बन्धी नहीं है,... यह पुद्गल शरीरादि रजकण दूसरे। शरीर तो नोकर्म में गया। यह दूसरा। नोकर्म शरीर भिन्न। यह नहीं। यह जीव सम्बन्धी में आया। परन्तु इसके अतिरिक्त यों ही पुद्गल है न? और धर्मास्ति, अधर्मास्ति इत्यादि वे अजीव जीवसम्बन्धी नहीं। वे अजीव, जीवसम्बन्धी नहीं है, ऐसा। शरीरादि, वाणी आदि, भावकर्म आदि, द्रव्यकर्म आदि जीवसम्बन्धी अजीव। वे जीव सम्बन्ध बिना के अजीव। आहाहा! देखा! यह पुण्य-पाप, दया-दान, व्रत के परिणाम को यहाँ अजीव में डाला। आहाहा!

मुमुक्षु : पुण्य तो भावकर्म में आया।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह डाला न भावकर्म, कहा।

मुमुक्षु : जीव सम्बन्धी कहा।

पूज्य गुरुदेवश्री : जीव सम्बन्धी, परन्तु वह भावकर्म अजीव। जीवसम्बन्धी भावकर्म, वह अजीव। आहाहा! समझ में आया? आहाहा!

जीव से भिन्न हैं। लो! अर्थात् दोनों, हों! जीवसम्बन्धी में द्रव्यकर्म, नोकर्म और भावकर्म तथा सम्बन्धरहित के यह सब **जीव से भिन्न हैं।** आहाहा! समझ में आया? जीव सम्बन्धी में जड़कर्म, भावकर्म, शरीर, वाणी, नोकर्म और उस सम्बन्धरहित के— जीव सम्बन्धरहित के पुद्गल, आकाश और कालादि, उन सबको अजीव जान। उन्हें तुझसे भिन्न जान, ऐसा कहते हैं। **अजीव हैं, जीव से भिन्न हैं।** आहाहा! **इस कारण जीव से भिन्न अजीवरूप जो पदार्थ हैं, उनको अपने मत समझो।** आहाहा! यह पुण्य और पाप, दया और दान, अरे! जिस भाव से तीर्थंकरगोत्र बँधता है, वह अजीव है। उसे अपना न मानो। आहाहा! ऐसा कहते हैं... बहुत स्पष्टीकरण होता है। यह ऐसा है। आहाहा!

मुमुक्षु : भावकर्म....

पूज्य गुरुदेवश्री : भावकर्म, वह अजीव। जीव के सम्बन्ध में भले हो, परन्तु है अजीव। आहाहा! वह जीव से भिन्न शुद्ध चैतन्य भगवान आत्मा, उससे व्यवहार भिन्न। आहाहा! व्यवहार से होता है, परम्परा होता है। इसमें आया है न? वे वहाँ फँस गये हैं

सब। किसी प्रकार भी कुछ... भाई! वह तो अजीव है। उससे जीव ज्ञात नहीं होता, जीव-प्राप्ति नहीं होती। आहाहा!

वीतरागी आनन्द की निर्विकल्प शान्ति द्वारा वह ज्ञात हो, ऐसा है। क्योंकि उसकी जाति में यह बात पड़ी है। आहाहा! भावकर्म में यह वस्तु नहीं। उससे आत्मा ज्ञात नहीं होता। क्योंकि वह अजीव है। जीव से भिन्न लक्षणवाला है। उससे जीव कैसे ज्ञात हो? आहाहा! इस व्यवहार के राग से ज्ञात नहीं होता, ऐसा कहते हैं। राग को व्यवहारमोक्षमार्ग कहा है न? व्यवहारमोक्षमार्ग, उससे ज्ञात नहीं होता, ऐसा कहते हैं। आहाहा!

यद्यपि रागादिक विभाव परिणाम जीव में ही उपजते हैं,... अब स्पष्टीकरण करते हैं। पुण्य और पाप के भाव **विभाव परिणाम जीव में ही उपजते हैं, इससे जीव के कहे जाते हैं, परन्तु वे कर्मजनित हैं,...** लो! निमित्त से होते थे न, इससे कर्मजनित। विकार निमित्त से हुआ। कौन सी बात करते हैं? भाई! आहाहा! यहाँ तो उसका लक्षण नहीं और उसे छोड़ना है, इस अपेक्षा से कर्मजनित कहा। बाकी है तो विकार उसकी पर्याय के उल्टे पुरुषार्थ से ही हुआ है। समझ में आया? जहाँ परमार्थ को निषेधने जाये, वहाँ यह कहे, जो निमित्त से नहीं होता। वहाँ तो कर्मजन्य विकार है। वह स्वभाव नहीं, इतना सिद्ध करना है। आहाहा!

यहाँ कर्मजनित कहे और पंचास्तिकाय की गाथा-६२ में ऐसा कहे, यह विकारी परिणाम षट्कारक का परिणमन, निमित्त की—कारक की अपेक्षा बिना अपने से होता है। वहाँ इसकी अस्ति सिद्ध करनी है और यहाँ इसका निषेध सिद्ध करना है। समझ में आया? आहाहा! अरे! भगवान का विरह पड़ा और ऐसे सब झगड़े उठे हैं।

परपदार्थ (कर्म) के सम्बन्ध से हैं,... देखा! परपदार्थ के सम्बन्ध से है। यह स्वयं स्पष्टीकरण किया। **इसलिए पर ही समझो।** व्यवहाररत्नत्रय का जो शुभराग है, वह कर्मजनित समझकर पर समझो। आहाहा! **यहाँ पर जीव-अजीव दो पदार्थ कहे गये हैं, उनमें से शुद्ध चेतना लक्षण का धारण करनेवाला शुद्धात्मा...** लो! राग को अजीव कहा न? और पुद्गलादि का अजीव कहा। भिन्न है उन्हें। तो यह जीव-अजीव दो पदार्थ कहे, उनमें से शुद्ध चेतना लक्षण को धारण करनेवाला भगवान... आहाहा! उसका ध्यान करनेयोग्य है।

रागादि व्यवहाररत्नत्रय अजीव है। वह अजीव है, इसलिए छोड़नेयोग्य है। वह ध्यान करनेयोग्य नहीं। तथा एक ओर ऐसा आया कहीं, भेदाभेद रत्नत्रय की आराधना। आया है। इस अपेक्षा से, भाई! वस्तु तो अभेद रत्नत्रय, वही आराधक है। परन्तु विकल्प का आरोप डालकर उसे व्यवहार का आराधन कहने में आया है। आहाहा! कथन दो प्रकार से है। आराधन निश्चय का, अभेद का (है वैसा) भेद का वैसा आराधन नहीं। उसके कथन दो प्रकार से आये हैं। आहाहा! समझ में आया? अब ऐसे सब कहाँ निर्णय करना? भाई! सत्य है, उसे खड़ा रख।

शुद्धात्मा ही ध्यान करने योग्य है,... एकान्त नहीं हो गया? 'ही' कहा तो। शुद्धात्मा ही ध्यान करनेयोग्य है। कथंचित् शुद्धात्मा और कथंचित् व्यवहार, ऐसा स्याद्वाद होगा न? यह बात ऐसे लोग लेते हैं। भाई! यह **शुद्धात्मा ही ध्यान करने योग्य है,...** दूसरा नहीं। ऐसा अनेकान्त है। शुद्धात्मा भी ध्यान करनेयोग्य है और राग भी ध्यान करनेयोग्य है, यह स्याद्वाद है—ऐसा नहीं है। आहाहा! अनेकान्त किया था न? कलशटीका में नहीं? सत्ता और आत्मा अभेद है और भेद है। सत्ता वह आत्मा, यह अभेद। और आत्मा की सत्तागुण भिन्न, यह अनेकान्त है। ऐसा कलशटीका में कहा है। कलशटीका में है न? सत्ता, वह द्रव्य है, वह अभेद है। और वह सत्ता द्रव्य से भिन्न है, इसका नाम अनेकान्त है। समझ में आया? कलश में है कहीं। अनेकान्त के कलश में है। एक जगह है।

यहाँ तो कहते हैं एकान्त प्रभु सम्यक्। शुद्धात्मा ही निश्चय से ध्यान करनेयोग्य है। कथंचित् यह और कथंचित् यह, ऐसा नहीं है। विशेष कहेंगे...

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)